पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा ७३
शिकोहाबाद, ता. २७-३-१९८९, प्रवचन नंबर P ०२

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है, उसका कर्ता-कर्म अधिकार है। उसका स्वाध्याय करेंगे। कर्ता और कर्म। पहले, प्रथम यह आत्मा है वह ज्ञान का कर्ता है और पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है। ज्ञानावरणादि ८ प्रकार का कर्म बंधता है, उसका भी कर्ता नहीं है और शरीर का जो भाग है देह, मन, वाणी, वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।। (आत्मख्याति कलश ६२)

अनादिकाल से आत्मा ज्ञानमय रहा है और अनंतकाल तक वो ज्ञानमय ही रहने वाला है। वो देहमय होता नहीं है कभी और जड़कर्ममय भी होता नहीं है और रागादि विभावभावरूप भी होता नहीं है। वह तो ज्ञानमय आत्मा है। तो आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना। ऐसा ज्ञान का करनेवाला आत्मा है। आत्मा कर्ता और आत्मज्ञान उसका कार्य यानि कर्म। कर्म यानि कार्य। आत्मा का कार्य क्या है? अपने को निरंतर जानना, देखना वो आत्मा का कर्म नाम कार्य है। वह अनादिकाल से आत्मा (को) भूल गया कि मैं ज्ञानमय हूँ, इसलिए जानना देखना वही मेरा कर्तव्य- एक ही मेरा कर्तव्य है, वो अनंत अनंत काल से भूल गया। और शरीरादि नोकर्म, ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म जड़ अचेतन हैं, उसका कर्ता नहीं होने पर भी 'मैं उसका कर्ता हूँ'- ऐसी भ्रान्ति हो गयी है।

जो हाथ हिलता है, और पैर स्वयं चलता है, स्वयं हाथ हिलता है, पैर तो स्वयं चलता है। उसका कर्ता नहीं होने पर भी उसकी दृष्टि ज्ञायक पर नहीं है और हाथ और पैर पर दृष्टि है, लक्ष्य है तो उसकी जो पुद्गल की क्रिया स्वयं अपने से होने पर भी ये क्रिया का प्रतिभास उपयोग में आता है। जैसे दर्पण में अग्नि का प्रतिभास आता है मगर अग्नि दर्पण में आती नहीं है। ऐसे स्वयं हिलता हाथ और स्वयं चलता पैर- पाँव, उसकी क्रिया ज्ञान में जानने में आती है, तो 'मैं केवल जाननहार हूँ'- ऐसा होना चाहिए, वो भूल गया। तो 'मैंने हाथ हिलाया और मैंने पैर चलाया' ऐसे दो द्रव्य के बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध का अभाव होने पर भी 'मैं कर्ता और ये जड़ क्रिया होती है, (वो) मेरा कार्य है' ऐसा अनादि काल से दो द्रव्यों के बीच में कर्ता-कर्म के सम्बन्ध का अभाव होने पर भी 'मैं कर्ता हूँ और वो मेरा कार्य है'- ऐसी भ्रान्ति अनादि काल से हुई है। वह भ्रान्ति है।

क्योंकि ये जड़ पदार्थ भी परिणमनशील है। वो स्वयं कर्ता-कर्म पुद्गल का पुद्गल में है। जीव का कर्ता-कर्म जीव में है। जीव कर्ता हो जाये और हाथ हिले, वह उसका कार्य (अर्थात्) कर्म बन जाए, ऐसा तीन काल में बननेवाला नहीं है। मानता है वह तो उसका अज्ञान है। ऐसे अंदर में जो पुण्य-पाप की वृत्ति का उत्थान होता है, शुभाशुभभाव की लगनी (रूचि) का जन्म होता है, संकल्प-विकल्प की विभाव-विकार पर्याय प्रगट होती है... जैसे हाथ हिलता है, ऐसे राग होता है। राग राग से स्वयं होने पर

भी, जैसे हाथ स्वयं हिलता है, उसकी दृष्टि हाथ के ऊपर है, ज्ञाता पर नहीं है, तो 'मैंने हाथ हिलाया'- ऐसी भ्रान्ति अज्ञान मिथ्यात्व उत्पन्न हो जाता है। ऐसे पुण्य-पाप का परिणाम भी स्वयं उत्पन्न होता है। नैसर्गिक है वो, ऐसा समयसार में संस्कृत का पाठ है। उसको करनेवाला आत्मा नहीं है। उसको जाननेवाला है मगर करनेवाला नहीं है तो भी 'मैं जाननहार हूँ', वो भूल गया है। और राग का प्रतिभास, राग की क्रिया (का) स्वच्छ ज्ञान में प्रतिभास तो होता है। प्रतिभास के समय ज्ञान भिन्न और राग भिन्न ऐसा भेदज्ञान का अभाव होने से अज्ञानी को ऐसी भ्रान्ति हो जाती है कि राग मैंने किया। 'मैंने ज्ञान किया कि राग किया?'- उसका विचार भी करता नहीं है तो राग के साथ कर्ता-कर्म की भ्रान्ति हो गयी।

आत्मा कर्ता और रागादि मेरा कार्य- कर्म, वो अज्ञानमय भाव है। क्योंकि स्वभाव और विभाव के बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है और जीव और अजीव के बीच में भी कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। हाँ, कर्ता-कर्म सम्बन्ध इतना है कि आत्मा कर्ता और आत्मा का अतीन्द्रियज्ञान हुआ (वह उसका कर्म)। इन्द्रियज्ञान की बात नहीं है। इन्द्रियज्ञान ज्ञान नहीं है, ज्ञेय है। तो अतीन्द्रियज्ञान के द्वारा, जो आत्मा स्वसंवेदनज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है। अनुभव में वेदन प्रत्यक्ष आता है। तो वो जो अतीन्द्रियज्ञान कर्म नाम कार्य है आत्मा का, वो स्वभाव क्रिया है और आत्मा उसका कर्ता है। ऐसा कर्ता-कर्म एक द्रव्य में होता है और स्वजाति में होता है। क्या कहा? एक द्रव्य में होता है और स्वजाति के बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध होता है। आत्मा ज्ञानमय है। आत्मा का ज्ञान उसका कर्म है, आत्मा कर्ता है। एक द्रव्य हो गया और दूसरा स्वजाति हो गई। आत्मा चेतन और परिणाम चेतना- वो स्वजाति का परिणाम हुआ। अपनी जाति का परिणाम हुआ तो उसके बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध, व्याप्य-व्यापक संबंध बनता है।

परद्रव्य के साथ, जड़-चेतन के बीच में कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं होता है। और आत्मा चेतन और रागादि विभावभाव, ये विभावभाव है, स्वजाति भाव नहीं है। इसलिए परमार्थ दृष्टि से देखा जाए तो, आत्मा के स्वभाव के समीप जाकर देखे तो राग के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। तो कर्ता-कर्म अधिकार में... ये कर्ता-कर्म अधिकार! हज़ारों लाखों दिगम्बर के शास्त्र हैं, मगर स्पेशियल कर्ता-कर्म अधिकार समयसार में आया। ये समयसार में कर्ता-कर्म अधिकार आने का कारण है कि उस समय इतना मिथ्यात्व अन्धकार फैल गया था कि कईं लोग मानते थे कि ईश्वर कर्ता है। ईश्वर जीवों को सुखी-दुःखी करता है, ऐसी भ्रान्ति फैल गयी थी। तो उसका निषेध करने के लिए, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता हो सकता नहीं है, यह बात कर्ता-कर्म अधिकार में उन्होंने लिखी।

दूसरी बात, ऐसा अन्धकार फैल गया कि जैसे-जैसे कर्म का उदय आता है ऐसे-ऐसे क्रोधादि क्रिया हो जाती है मैं क्या करूं? क्रोध करना तो नहीं है मुझे मगर चारित्रमोह कर्म का उदय आया तो क्रोध हुआ। यानि वो जड़कर्म कर्ता और ये विभावभाव उसका कर्म- ऐसी अनादि काल की भ्रान्ति थी। तो आचार्य भगवान ने कहा कि जड़ पदार्थ से राग नहीं होता है। और राग जो अपने स्वभाव को भूलकर करता है, तो अज्ञानी बन जाता है। और अकर्ता बनता है तो ज्ञानी बन जाता है। ऐसे कर्ता-कर्म अधिकार स्पेशियल आया। संपूर्ण समयसार में ४१५ गाथायें हैं, उसमें ज़्यादा से ज़्यादा कर्ता-कर्म

अधिकार की गाथा हैं। यानि आत्मा ज्ञाता होने पर भी अनादि काल से अपने आप, दूसरे के उपदेश बिना स्वयं 'मैं ज्ञाता हूँ' भूलकर 'मैं कर्ता हूँ'- ऐसे अनादि काल से भ्रान्ति उसको हो गयी है। भ्रान्ति टालने के लिए कर्ता-कर्म अधिकार है।

और इससे भी ज़्यादा सूक्ष्म ये ७३ गाथा में कहना है। राग का कर्ता तो है ही नहीं आत्मा। कर्ता माननेवाला अज्ञानी बन जाता है। राग का कर्ता मानता है वो अज्ञानी बनता है। अज्ञानी है इसलिए राग का कर्ता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा? अज्ञानी है इसलिए राग का कर्ता है ऐसा नहीं है। 'राग का करने वाला मैं हूँ'- ऐसा जो मानता है वह वो समय में, एक समय के लिए अज्ञानी बनता है। दूसरे समय, "अरे! मैं तो ज्ञाता हूँ! राग का करनेवाला नहीं हूँ"- तो सम्यग्ज्ञान प्रगट हो जाता है। ज्ञान अभिमुख हो जाता है।

अभी इससे ज़्यादा सूक्ष्म बात इधर तो ये करनी है कि आत्मा कर्ता और आत्मज्ञान का परिणाम- सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो परिणाम उत्पन्न होता है... व्यवहार मोक्षमार्ग का तो कर्ता है ही नहीं, वो तो स्वभाव और विभाव के बीच में कर्ता-कर्म संबंध नहीं है। मगर आत्मा चेतन है, चैतन्य उसका गुण है और ज्ञानचेतना उसका परिणाम है। तो जब ज्ञानचेतना परिणाम प्रगट होता है आत्माश्रित, वह स्वयं उसके षट्कारक से प्रगट होता है। मैं आत्मज्ञान का कर्ता नहीं हूँ। 'मैं उस कार्य का ज्ञाता हूँ'- वो भी व्यवहार है। क्या कहा? कि वो जो ज्ञानचेतना प्रगट होती है जिसमें आनंद आता है, अतीन्द्रिय आनंद। सम्यग्ज्ञान की पर्याय की बात चलती है। वो होता है ऐसा मैं जानता हूँ। 'मैंने किया'- ऐसा सम्यग्ज्ञान में जानने में आता नहीं है। और कभी शास्त्र में आये कि ज्ञानक्रिया स्वभावभूत होने से निषेध करने में नहीं आई इसलिए कर्ता है, (वहाँ) वह बात 'कर्ता के उपचार से कर्ता है'- ऐसा समझना चाहिए। व्यवहारनय से कथन है। परिणाम का कर्ता कहना वो भी व्यवहारनय का कथन है, क्योंकि आत्मा अकारक, अवेदक, अकर्ता है, अभोक्ता है आत्मा। आत्मा ज्ञाता है, ज्ञाता है इसलिए जाननेवाला तो है मगर करनेवाला नहीं है। 'जाननक्रिया भी स्वयं होती है, ओहोहो!'- ऐसा ज्ञान जानता है। 'मैंने किया ज्ञान'- ऐसा जानता नहीं है। तो दृष्टि पर्याय से हटकर द्रव्य पर आती है तो उसको आत्मा का अनुभव होता है। क्योंकि परिणाम सत्, अहेतुक, निरपेक्ष होता है। परिणाम को उत्पन्न करनेवाला ध्रुव तत्व नहीं है। आहाहा! ऐसी अलौकिक बात! ये ७३ नंबर की गाथा में शिष्य का प्रश्न है। शिष्य का प्रश्न पहले पढ़ें।

अब वो प्रश्न करता है कि: यह आत्मा, मेरा आत्मा, **किस विधि से आस्रवों से निवृत्त होता है?** यानि जो मिथ्यात्व नाम का आस्रव, अज्ञान नाम का आस्रव, यह कषाय का परिणाम जो उत्पन्न होता है, इससे मुझे दुःख का वेदन आता है तो वो भी दुःख नहीं चाहिए। दुःख की निवृत्ति का अर्थात आस्त्रव की निवृत्ति की विधि क्या है? विधि, आहाहा! जैसे हलवा बनाने की विधि आती है न, ऐसे ये दुःख की निवृत्ति का उपाय क्या है?- ऐसा जिज्ञासु जीव ने पूछा। इसका अर्थ यह हुआ कि अपनी पर्याय में दोष तो है। दोष का तो स्वीकार कर लिया। स्वछन्दी नहीं है, निश्चयाभासी नहीं है, समझे? क्या समझे?

मुमुक्षु: निश्चयाभासी नहीं है और दोष का (स्वीकार करनेवाला है)।

उत्तर: स्वछन्दी नहीं है। दोष का स्वीकार कर लिया कि 'प्रभु! मुझे मेरे स्वभाव का अवलम्बन नहीं आता है और मुझे शान्ति का वेदन भी नहीं आता है। सुख का वेदन भी नहीं आता है। २४ घंटे संकल्प-विकल्प उत्पन्न होता है और इससे मैं दुःखी हूँ। प्रभु! कोई सुख का उपाय मुझको बताओ।' सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की पहचान तो हो गई। उन सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पहचान होने के बाद उसको संतोष नहीं है। ठीक है, दूसरे के पास तो कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र हैं, वो तो संसार में रुलेगा। मैं तो सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के समीप आ गया, उसमें कुछ है नहीं माल। आ गया तो क्या? देव-गुरु-शास्त्र तुझे मोक्ष देने वाले हैं? देना-लेना तो व्यवहार की बात है। (ऐसा) सब है ही नहीं, व्यवहार ही नहीं है ऐसा। निश्चय तो नहीं है, व्यवहार की बात (कि) कोई सम्यग्दर्शन दे देवे और शिष्य ले लेवे- ऐसा व्यवहार भी नहीं है। आहाहा!

तो क्या करना अब? कि जो अरिहंत देव, आत्मज्ञानी गुरु, जिनवाणी यह आत्मा का स्वरुप जो फरमाते हैं, ऐसा स्वरुप का निर्णय करके उसका प्रत्यक्ष अनुभव करके आस्त्रव की निवृत्ति हो जाती है। यानि अज्ञान की निवृत्ति हो जाती है तो अज्ञान यानि दुःख की भी निवृत्ति हो जाती है। कर्मचेतना ही प्रगट नहीं होती है, तो कर्मफलचेतना होती नहीं, तो ज्ञानचेतना प्रगट हो जाती है। तो शिष्य का प्रश्न है कि, 'प्रभु! मैं दुःखी हूँ, दुःख की निवृत्ति का उपाय बताओ!' आहाहा! तो आचार्य भगवान उपाय बताते हैं। आचार्य भगवान ऐसा उपाय नहीं बताते हैं कि तुम ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, दान करो, शील करो, व्रत करो, तप करो, प्रतिक्रमण, यात्रा करो, आहाहा! मंदिर बनाओ। ऐसी बात तो नहीं है। वह तो शुभभाव है। कर्ताबुद्धि के साथ-साथ, मिथ्यात्व के साथ-साथ, मिथ्यात्व साथ रखकर शुभभाव अनंत बार किया। मगर मिथ्यात्व छोड़कर शुभभाव आया नहीं! क्या? फिर गया शब्द!!

मुमुक्षु: मिथ्यात्व छोड़कर शुभभाव आया नहीं! कमाल कर दिया साहब!

उत्तर: पहले मिथ्यात्व सहित शुभभाव करता था! अब आत्मभान हुआ तो मिथ्यात्व रहित शुभभाव आता है उसको जानता है मगर करता नहीं है। कार्य उलट-पुलट हो गया। आहाहा! बंधमार्ग से निकल गया मोक्षमार्ग में आ गया, अल्पकाल में मुक्ति होने वाली है। आहाहा! ऐसा अपूर्व ये समयसार! हम तो जन्म से स्थानकवासी थे, समझे? आप तो जन्म से दिगंबर हैं।

मुमुक्षु: तो भी चौपट। कुछ पता नहीं है।

उत्तर: प्रभु! ये क्या कुंदकुंद आदि आचार्य भावलिंगी संत फरमाते हैं तेरा स्वरुप आहाहा! लक्ष में ले, लक्ष में ले, शान्ति से विचार कर पक्षपात छोड़कर। व्यवहार का पक्ष छोड़कर निश्चय के पक्ष में आ जा और निश्चय का पक्ष छोड़कर अनुभव में आ जा। आहाहा! निश्चय के पक्षवाला भी संसारी है। आहाहा! व्यवहार के पक्षवाला तो संसारी है ही, मगर समयसार पढ़नेवाला भी जो आत्मानुभव न करे और आत्मा का जैसा स्वरूप है ऐसे पक्ष का विकल्प करे, तो भी संसार है। आहाहा!

मुमक्षु: साब! अफर फरमान!

उत्तर: ये जिनागम में कोई छूटछाट नहीं है। आहाहा! ऐसा शिष्य का प्रश्न है, उत्तर भी बढ़िया से बढ़िया अभी आएगा! देखो!

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।
तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ।।७३।।
मैं एक, शुद्ध, ममत्वहीन रु ज्ञानदर्शनपूर्ण हूँ।
इसमें रहूं स्थित, लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ।।७३।।

क्षय की ध्वनि है। आहाहा! ये पांचवा आरा (काल) है, चौथा आरा (काल) नहीं है। पंचम काल है। समझे? तो पंचम काल में क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता है और क्षायिक चारित्र भी नहीं होता है। मगर पंचम काल में उपशम सम्यग्दर्शन और क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है। मगर इधर ऐसा है कि कोई जीव क्षयोपशम सम्यग्दर्शन लेकर निकलता है पंचम काल में, इस काल में, तो अप्रतिहतरूप से, आहाहा! उसको नियम से आगे क्षायिक हो जाता है। आगे जब केवली-श्रुतकेवली के समीप हो गया निमित्त रूप से और अपना उपादान, तो क्षायिक हो जाता है। इधर अभी क्षायिक नहीं है तो भी क्षय की ध्वनि है। आहाहा! अभी उसकी मूल गाथा २००० साल पहले कुन्दकुन्दाचार्यभगवान..., मद्रास से ८० मील दूर एक पोन्नुर हिल है। पोन्नुर का अर्थ सोना। पोन्नुर का अर्थ सोने की हिल- टेकरी (पहाड़) आहाहा! तपोभूमि है, उनकी पादुका भी है। वहां से गए, महाविदेह क्षेत्र पधारे। यात्रा हुई, बड़ी यात्रा, भगवान का साक्षात् दर्शन हुआ। उन्होंने वहां से आकर इधर शास्त्र लिखा।

उसमें वें फरमाते हैं कि सुन भैया! कि '**ज्ञानी विचार करता है कि...**' ऐसा पाठ है। ज्ञानी यानि जिसके अंदर मन (हो), मनवाला प्राणी हो, विचार करने की शक्ति प्रगट हो गयी हो। इतना क्षयोपशम तो हो गया है, इसका नाम ज्ञानी है। ज्ञानी यानि धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि नहीं, सम्यग्दृष्टि को विचार करने की ज़रूरत रहती नहीं है। विचार तो जिसको अनुभव नहीं है, उसको विचार करने की ज़रूरत रहती है। और विचार करके भी अटकना नहीं है। विचार करके निर्णय करना और निर्णय करने के बाद अनुभव कर लेना।

प्रथम और पश्चात्। ये गाथा का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध, दो भेद हैं। पूर्वार्ध समझे? वहां अल्प-विराम होता है। और उत्तरार्ध जो आता है, पूरा हो जाता है। तो पूर्वार्ध में क्या(कहा)? कि आत्मा का स्वरुप क्या है- ऐसा तू प्रथम समझकर निर्णय कर ले। आहाहा! केवल सुनने से कार्यसिद्धि नहीं होती है और केवल शास्त्र स्वाध्याय करने से कार्यसिद्धि नहीं होती है। और ऊपर-ऊपर के निर्णय से भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है। धारणा से भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है। शास्त्र में लिखी गाथा गाये, बोले, उसमें कुछ है नहीं। वो तो विकल्प में शब्द की पर्याय है। उसमें आत्मा है नहीं। मगर तू निर्णय कर मैं कहता हूँ कि आत्मा का- तेरा स्वरुप क्या है? तेरा स्वरुप मैं बताता हूँ। तेरे स्वरुप को मैं देता नहीं हूँ। तेरे स्वरुप को तू जानता नहीं है, तो तेरे स्वरुप को मैं शब्द के द्वारा बताता हूँ। ऐसी मेरी करुणा का भाव थोड़ा आ गया है। आहाहा! निष्कारण करुणा है। अकारण करुणा। ज्ञानी स्वरुप में लीन रह सकते नहीं हैं तब उनको शास्त्र लिखने का भाव आ जाता है।

तो '**ज्ञानी विचार करता है...**' ज्ञानी यानि ज्ञान जिसमें है प्रगट क्षयोपशम, मनवाला प्राणी। जिसको मन नहीं है उसको विचार करने की शक्ति (नहीं है)। हेय क्या और उपादेय क्या उसकी शक्ति पांच इन्द्रिय में नहीं है। मगर मन है मन! मन के दो प्रकार हैं। एक भावमन और एक द्रव्यमन।

जैसे यह द्रव्य इन्द्रिय है कान, वो तो जड़ है। ऐसा जो मन है इधर द्रव्यमन, वो ऑपरेशन करने से दिखाई नहीं देता है। ऐसा मनोवर्गणा नाम के सूक्ष्म परमाणु का बना हुआ एक आठ पंखुड़ी जैसा खिला हुआ कमल है न, ऐसा इधर मन है। मन इधर (मस्तक में) नहीं है। जड़मन इधर (नाभि के ऊपर) है, जड़मन है न, द्रव्यमन ये इधर है और उसके संग से जो उपयोग वहां लगता है, उसका अवलम्बन करता है उपयोग। आत्मा का अवलम्बन करे (उपयोग) तो तो द्रव्यमन का अवलम्बन छूटे और भावमन भी विश्राम हो जाये और आत्मज्ञान प्रगट हो जाता है। मगर उपयोग आत्मा में नहीं लगता है तो उपयोग मन के संग काम करता है, तो भावमन के द्वारा जो विचार करके 'मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, निर्ममत्व हूँ और ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ' इस गाथा में है। **'ज्ञानी विचार करता है कि निश्चय से...'** यानि खरेखर। निश्चय का अर्थ खरेखर। एक सच्चा और एक झूठ। एक सत्यार्थ, एक असत्यार्थ।

'निश्चय से मैं एक हूँ...' आहाहा! तू ऐसा विचार करके निर्णय कर कि मैं एक हूँ, अनेक रूप नहीं हूँ। एक, अनेक का निषेध करता है। एक जो शब्द है वो अनेक का निषेध करता है। मैं पुरुष हूँ और मैं स्त्री हूँ और मैं देव हूँ और मैं मनुष्य हूँ। नहीं नहीं नहीं आहाहा! मैं १४ गुणस्थानवाला हूँ। नहीं! तू एक है। आहाहा! चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीव समास ये तो स्वांग हैं| ये तू नहीं है। इससे भिन्न तू तो एक ज्ञायक भाव है। **'मैं एक हूँ...'** आहाहा! होना नहीं, हूँ! कब? कभी पढ़े तब भी, और जब सुने तब भी। एक हूँ आहाहा! मैं एक हूँ।

दूसरा शब्द '**मैं शुद्ध हूँ'।** 'मैं' शब्द है न मैं, अक्षर है मैं, वो आदि दीपक है। आदि दीपक यानि 'मैं' शब्द सबमें लगाया है- **मैं** एक हूँ, **मैं** शुद्ध हूँ, **मैं** निर्ममत्व हूँ, **मैं** दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण हूँ। मैं एक हूँ और मैं शुद्ध हूँ आहाहा! शुद्ध होना नहीं है मुझे। जो नहीं है उसकी भावना नहीं होती है और जो है उसकी भावना हो सकती है। जो है उसका ध्यान हो सकता है, जो नहीं है उसका ध्यान हो सकता नहीं है। नहीं है उसका ज्ञान होता है मगर ध्यान होता नहीं। क्या कहा? है उसका ध्यान होता है। नहीं है उसका (ध्यान होता नहीं)। पूर्व पर्याय गयी उसका ध्यान कैसे करे? और भावी पर्याय आयी नहीं उसका ध्यान कैसे करे? और वर्तमान में तो राग है उसका ध्यान कैसे करे? ध्यान का तो विषय होना चाहिए और ध्यान का विषय अविनाशी होना चाहिए। ध्यान समयवर्ती है और ध्येय त्रिकालवर्ती है। और जब ध्येय का ध्यान होता है तब धर्मध्यान प्रगट हो जाता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

ध्यान करने के लिए बैठता हूँ मैं, मगर धोला (सफ़ेद), लाल, पीला ऐसा प्रकाश दिखता है। क्यों? कि जो ध्येय है उसका स्पष्ट ज्ञान नहीं है उसके पास। ध्येय के स्पष्ट ज्ञान बिना तो धर्मध्यान प्रगट होता नहीं है। तो अभी ध्येय की बात चलती है। ध्यान की बात आगे करेंगे। मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ। संवर, निर्जरा और मोक्ष वह क्षणिक शुद्ध है, अनित्य शुद्ध है, वो तो मिथ्यादृष्टि के पास है ही नहीं। तो 'मैं हूँ'- ऐसा हो सकता नहीं है। जो है उसके साथ 'हूँ' लगता है। हूँ विद्यमान, वर्तमान, हूँ, शुद्ध हूँ अभी। (शिष्य) कहता है कि अभी तो मैं मिथ्यादृष्टि हूँ। तू मिथ्यादृष्टि नहीं है। 'मैं मिथ्यादृष्टि हूँ' (ऐसा मानेगा) तो परंपरा मिथ्यादृष्टि चलेगी। मिथ्यात्व के नाश का उपाय वो नहीं है। मैं अशुद्ध नहीं हूँ, मैं शुद्ध हूँ। मैं निरपेक्ष शुद्ध हूँ। संवर, निर्जरा और मोक्ष सापेक्ष शुद्ध हैं, अनित्य शुद्ध हैं। मैं तो निरपेक्ष, अनादि अनंत, शाश्वत शुद्ध ही हूँ। आहाहा! शुद्ध ही हूँ। आहाहा!

तीसरा बोल - **ममता रहित हूँ**। प्रभु! ममता तो है। मेरे पास ममता तो है। यह देह प्रति ममता। कुटुंब के प्रति ममता। ये शास्त्रज्ञान के उघाड़ के अभिमान के प्रति ममता। कोई प्रमुख हो, सेक्रेटरी, सत्ता की ममता। सत्ता की ममता। पैसा की ममता। हमारे रिश्तेदार सगेवाला बहुत हमारा व्यवहार ऐसा है - ऐसी ममता ममता ममता में उसका काल गँवाता है। मगर जो परिणाम में ममत्व भाव होता है, वो तू नहीं है। तेरे में ममत्व उत्पन्न ही नहीं होता है। आहाहा! तू तो ममत्व से रहित है। निर्ममत्व तेरा स्वभाव है।

मुमुक्षु: ममता के समय ही निर्मम है?

उत्तर: ममत्व का पर्याय में है उस समय ममता से रहित निर्ममत्व है। उसका लक्ष करने से परिणाम का ममत्व छूट जाता है। इधर (अंदर) अहम् आ जाता है, पर से ममत्व छूट जाता है। इधर (अंदर) अहम् आ जाता है तो पर से ममत्व छूट जाता है। ऐसे शिष्य के प्रश्न का ही उत्तर चलता है कि ममत्व का नाश कैसे हो? परिणाम में ममत्व है। मेरा मेरा मेरा लड़का, मेरी लड़की, आहाहा! मेरे पिता, मेरी मम्मी आहाहा! तेरा क्या है, कुछ नहीं है। आहाहा! भ्रान्ति है। परिणाम तेरा नहीं है तो परपदार्थ मेरा है वो तो (कहाँ रहा)..., आहाहा! एक समय का परिणाम उत्पन्न होता है, वो आत्मा का स्व नहीं है। एक चिदानंद भगवान आत्मा, ज्ञानानंद परमात्मा वो स्व है और मैं उसका स्वामी हूँ। परिणाम का मैं स्वामी नहीं हूँ।

मुमुक्षु: मिथ्यादृष्टि का परिणाम भी मेरा है-ऐसा नहीं है? वो भी मेरा है ऐसा नहीं है?

उत्तर: नहीं है, बिलकुल नहीं है। वो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। 'मिथ्यात्व का परिणाम मेरा है' (ऐसा मानेगा) तो मिथ्यात्व जायेगा नहीं। 'मिथ्यात्व के परिणाम से भिन्न निर्ममत्व परमात्मा मैं हूँ'- (ऐसा श्रद्धान करेगा) तो मिथ्यात्व चला जायेगा।

मुमुक्षु: ऐसे दोष स्वीकार किया तब उसका निषेध किया तब स्वभाव का लक्ष किया?

उत्तर: मगर स्वीकार करने के बाद अटकने की बात नहीं है। दोष तो स्वीकार किया मगर दोष को स्वीकार करने के बाद दोष को टालने का प्रश्न है। रखने का प्रश्न हुआ नहीं है। क्या कहा? डॉक्टर के पास जाता है। बुखार है चार डिग्री? तो चार डिग्री का ज्ञान तो हुआ तो रखने के लिए ज्ञान हुआ कि टालने के लिए?

मुमुक्षु: टालने के लिए।

उत्तर: तो ही डॉक्टर के पास जाता है न भाईसाब। तो टालने की बात है न अभी? स्वीकार करने से तो ममत्व छूटता नहीं है। ऐसा बंध अधिकार में आचार्य भगवान ने फरमाया है। बंध अधिकार है, बंध अधिकार। बंध अधिकार। तो उसमें फरमाया आचार्य भगवान ने कि मैं बंधा हूँ, मैं बंधा हूँ, मैं बंधा हूँ तो बंध के छूटने का उपाय वो नहीं है। उसको छैनी मार दे तो बंध का अभाव हो जायेगा। मैं मिथ्यादृष्टि हूँ, मैं मिथ्यादृष्टि हूँ, मैं मिथ्यादृष्टि हूँ, मैं पापी हूँ, मैं संसारी हूँ, ऐसे शृंखला बार बार विचार करने पर भी वो मिथ्यात्व छूटता नहीं है। मिथ्यात्व से भिन्न जब आत्मा का ध्यान करता है जीव आहाहा! तब सम्यग्दर्शन प्रगट (हो जाता है)। सम्यग्दर्शन का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय और ध्रुव का सद्भाव आहाहा!

ध्रुव का ध्यान करने से, परमात्मा का ध्यान करने से..., परमात्मा का ध्यान करने कहाँ जाना? मंदिर जाना कि सम्मेद-शिखर? ये निज परमात्मा अंदर विराजमान है उसका ध्यान कर। यह उपदेश कथन पद्धति में ऐसा आता है कि ध्यान कर, मगर ध्यान सहज हो जाता है। मगर उपदेश बोध और सिद्धांत बोध में समझाने के लिए एकसाथ कहा जाता है। आहाहा! तो मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व है, स्वीकार तो शिष्य ने कर लिया। मगर मिथ्यात्व का नाश कैसे होवे??- ऐसे प्रश्न का उत्तर आया कि मिथ्यात्व तेरे में है नहीं। मेरे में है ऐसा मैंने स्वीकार किया और मैं कहता हूँ कि तेरे में नहीं है। वो क्या बात है? तेरी दृष्टि पर्याय पर है तो पर्याय से तू बोलता है कि मेरे में मिथ्यात्व है। (मगर) पर्याय को गौण कर, पर्याय को रखकर चिदानंद भगवान आत्मा सामान्य को देख तो तेरे में मिथ्यात्व है ही नहीं। और मिथ्यात्व से रहित जो स्वभावभाव है उसका अवलम्बन करने से पर्याय में से मिथ्यात्व टल जाता है। उसका व्यय और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है। यह जैनदर्शन है न? बहुत लॉजिकल है। ऐसा अंधश्रद्धा का विषय नहीं है। आगम से, युक्ति से, अनुमान से और अनुभव से सिद्ध हो जाता है। आहाहा! बंध अधिकार में बहुत लिखा ऐसे मैं बंधा हूँ, मैं बंधा हूँ, मेरे में राग है, मेरे में राग है.., ऐसा विचार करने से बंध छूटता नहीं है। आहाहा! आत्मा का अनुभव कर तो बंध छूट जाता है।

निश्चय से मैं एक हूँ, आहाहा! **मैं शुद्ध हूँ** और **मैं ममत्व रहित हूँ**। ममत्व रहित होता है वह दूसरा तत्व है और 'ममत्व रहित हूँ' वह दूसरा तत्व है। ममत्व रहित है वह जीव तत्व है, ममत्व से रहित होता है वह संवर तत्व है। संवर नया प्रगट होता है और जीव तो जूना है-पुराना। वह तो ममत्व से रहित त्रिकाल है, उसमें ममत्व की पर्याय प्रगट होती नहीं है। जो प्रगट हो जाये तो 'मैं शुद्ध हूँ'- वो शब्द झूठा सिद्ध होता है। पर्याय में ममत्व, मलिनता होने पर भी आत्मा पवित्र है। पर्याय अपवित्र होने पर भी आत्मा पवित्र रह गया है। जल मैला हो गया अपवित्र तो भी जल अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है। वह तो निर्मल रहता है। आहाहा! उसका एक अंश भी 100% निर्मल है स्वभाव। सामान्य स्वभाव 100% शत प्रतिशत निर्मल है। ऐसे सामान्य स्वभाव की बात बताते हैं, जब ज्ञानी का जन्म होता है तब सामान्य का पहलू बाहर आता है।

मुमुक्षु: बराबर। परम सत्य बात!

उत्तर: तहाँ तक सब विशेष को ही आत्मा मानते हैं, अनात्मा को ही आत्मा मानते हैं। आत्मा एक है उसके पहलू (पड़खा) दो हैं, एक सामान्य और एक विशेष। विशेष में अशुद्धि है तब सामान्य शुद्ध और परिपूर्ण रहता है। विशेष में मति श्रुत ज्ञान होने पर भी भगवान आत्मा तो ज्ञान से, दर्शन से परिपूर्ण रहता है। ये आता है ज्ञान से दर्शन से परिपूर्ण हूँ, ऐसा आएगा। ममता रहित हूँ और **दर्शनज्ञान से पूर्ण हूँ**। अभी तो मति श्रुत ज्ञान है, केवलज्ञान भी नहीं हुआ। तो पूर्ण दर्शन ज्ञान से अभी पूर्ण कैसे हूँ? कि तेरी नज़र पर्याय पर है और मेरी नज़र द्रव्य पर है। तू पर्याय को आत्मा मानता है और मैं द्रव्य को आत्मा मानता हूँ| हमारी और तेरी (मान्यता के) बीच में इतना बड़ा फर्क है। पदार्थ के प्रतिभास में तफ़ावत है। ज्ञानी और अज्ञानी के पदार्थ के प्रतिभास में (फर्क है)। एक पर्याय को आत्मा मानता है और एक द्रव्य को आत्मा मानते मानते पर्याय को जानता है। मगर पर्याय को आत्मा मानता (नहीं है)। क्या कहा?

मुमुक्षु: सही बात कही। एक पर्याय को जानता है द्रव्य को मानते मानते।

उत्तर: एक पर्याय को जानकार पर्याय को आत्मा मान लेता है, मिथ्यादृष्टि हो जाता है। दूसरा सम्यग्दृष्टि, द्रव्य को आत्मा मानकर पर्याय को जानता है मगर 'पर्याय मेरी है'- ऐसा मानता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु: निर्दोष बात है यह।

उत्तर: निर्दोष बात है ये। दिगंबर संतो ने तो निहाल कर दिया है। यह आपका ही शास्त्र है। हम तो नए दिगंबर हैं।

मुमुक्षु: मूल दिगंबर बताया साहब!

उत्तर: प्रभु, वो तो जो अनुभव करे वो दिगंबर है। आत्मा का अनुभव करे उसका नाम भाव दिगंबर है। भाव दिगंबर। नाम दिगंबर है, नाम से तो जैन है, नाम से तो जैन है मगर भाव से जैन होना, वह कोई अपूर्व बात है। आत्मा का अनुभव करने की ये बात है भैया! नाम से तो सब दिगंबर जैन हैं। सब दिगंबर जैन हैं मगर भाव से दिगंबर होना वो कोई अपूर्व चीज़ है।

'विरला जाने तत्व को विरला सुनता है कोई, विरला ध्यावे कोई।' वो विरल ही होता है।

दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण। प्रभु! मेरे पास तो मति-श्रुत ज्ञान है न? केवलज्ञान तो है नहीं? केवलज्ञान पूर्ण होता है...। अरे भैया! केवलज्ञान की बात नहीं है। हम तो आत्मा केवलज्ञान से भी भिन्न है- ऐसा स्वभाव तुमको बताते हैं। केवलज्ञान तो नया उत्पन्न होता है। जो उत्पन्न हो वो मैं नहीं। प्रगट होता है वो मैं नहीं, जो प्रगट है वो मैं हूँ। आहाहा! अभी टाइम? ९.३० अच्छा। पाव घंटा है। बहुत अपूर्व बात है। आचार्य भगवान फरमाते है समयसार में शुरुआत में, कि आज तक तूने बहुत काम-भोग-बंधन की कथा सुनी और परिचय भी किया मगर एकत्व-विभक्त आत्मा की बात आज तक तूने सुनी नहीं। ऐसी बात सुनाने का हमें भाव आ गया है।

श्रोता - केवलज्ञान प्रगट नहीं होता तब तक... (दूसरे श्रोता: प्रश्न बीच में नहीं।)

उत्तर: चालू में मज़ा नहीं आता। रात को प्रश्न जरूर करना। चिट्ठी में लिखकर दे देना भाई, ज़रूर लिखकर देना। एक नहीं सौ प्रश्न करना। एक नहीं सौ प्रश्न करना। हमारी जितनी शक्ति है उतनी शक्ति से हम खुलासा करेंगे। आहाहा! चालू में गड़बड़ होती है।

प्रभु! एकत्व-विभक्त आत्मा की बात कहने का मेरा आशय है, अभिप्राय है। एकत्व-विभक्त- इसका अर्थ क्या है? कि अनंत दर्शन, ज्ञान, आनंद से मैं परिपूर्ण एकत्व, उससे एकत्व, अनंत गुण से एकत्व-एकपना। एकत्व-एकपना, एकपना है आत्मा। आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख-वीर्य है। अनंत अनंत विभुत्व शक्ति, प्रभुत्व शक्ति, अनंत अनंत शक्ति, एक एक शक्ति परिपूर्ण है। एक एक शक्ति परिपूर्ण है, निरपेक्ष है। कर्म के साथ उसका सम्बन्ध नहीं है। और निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से जुदा (भिन्न) आत्मा है।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है - अनात्मा में होता है, मेरे में होता नहीं है। आहाहा! मैं तो त्रिकाल भगवान परमात्मा वर्तमान हूँ। आहाहा! ऐसे ज्ञान दर्शन से मैं परिपूर्ण हूँ। तो एकत्व यानि अनन्तगुण से एकपना, अनन्तगुण से एकपना। गुण तो अनंत हैं और एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं है।

ऐसा अतद्भाव अंदर है। होने पर भी वो एकपने रहता है। आहाहा! एक पहलू एकत्व का तो ये और (दूसरा) विभक्त हूँ...। केवलज्ञान से मैं भिन्न हूँ। किसने कहा? कुन्दकुन्दाचार्यभगवान ने लिखा। प्रमत्त-अप्रमत्त से मैं रहित हूँ। प्रमत्त यानि १ गुणस्थान से ६ गुणस्थान तक, वो प्रमत्त दशा कही जाती है। और ७ से १४ गुणस्थान तक अप्रमत्त। अप्रमत्त में यथाख्यात चारित्र आ गया और केवलज्ञान भी (आ गया)। इसका अर्थ पर्याय नहीं है, ऐसा नहीं है। पर्याय तो है। पर्याय की अस्ति मगर मेरे में नास्ति, ऐसी मेरी अस्ति उसका जो अनुभव, उसका नाम मस्ती। एकत्व-विभक्त आत्मा की बात मैं बताऊंगा। बाद में ऐसा कहा कि मैं तो बताऊंगा मगर अनुभव से प्रमाण करना। केवल सुनने से प्रमाण नहीं होता है। कोई पहले के काल में ऐसा जब शक्कर थी न शक्कर, खांड (चीनी) नहीं। शक्कर बहुत महँगी होती थी।

मुमुक्षु: बूरा

उत्तर: बूरा नहीं गट्ठा। गट्ठा मिश्री, हाँ तो बहुत महँगी थी। ३०-४०-५० रुपये किलो तब। समझे? तब ठग लोग भी निकलते हैं न, ठगलोग कमाने के लिए निकलते हैं तो शक्कर के साथ फटकड़ी रखे। फटकड़ी समझे? है न? फिटकरी। सफेद होती है न? ये भी सफेद वो भी सफेद। तो ऐसा बहन है न, बैरा लोग (गृहिणी)- लेडीज़ वो थोड़ी लोभी भी होती हैं। एक शक्करवाले, सच्चे शक्करवाले ने ६० रुपया भाव दिया। इसने (ठग ने) कहा ३० रुपये में दूंगा। अच्छा! २ किलो दे दो। आहाहा! तो दो किलो ले ली। उसकी परीक्षा नहीं की। परीक्षा करके प्रमाण नहीं किया। समझे? सफेद, ये भी सफेद, वो भी सफेद आहाहा! जो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति दोष रहित हो, वो लक्षण है। वो तो अलग बात है|

तो वह सफेद देखकर ले गई! क्या हुआ? तो वो लड़की का ससुर आया सासरा, तेज मगज (दिमाग) वाला, बहुत तेज मगजवाला होता है न! क्रोधी कोई। आए तो उनके लिए दूध बनाया, चाय बनाई, उसमें वो शक्कर डाल दी। उन्होंने पीया। ये क्या है?? (क्रोध में) कप को फेंक दिया। आहाहा! समझे? ऐसे धर्म के नाम पर जीव ठगाया। धर्म का सच्चा स्वरुप क्या है वो जानता नहीं है। अज्ञानी ऐसा करो तो धर्म, ऐसा करो तो धर्म..। आहाहा! धर्म नहीं करता है, कर्म हो जाता है। धर्म के नाम से कर्म हो जाता है। धर्म हो जाए तो तो निहाल हो जाए। धर्म यानि आत्मा का अनुभव।

अनुभव चिंतामनि रतन, अनुभव है रसकूप।
अनुभव मारग मोखकौ, अनुभव मोख सरूप ।।१८।। नाटक समयसार - उत्थानिका

सर्वज्ञ भगवान के आगम में अनुभूति का फरमान है। आत्मा का अनुभव करो। ज्ञानानुभूति, आनंदानुभूति उसका नाम धर्म है। तो आचार्य भगवान फरमाते हैं कि सुन भैया! तेरा प्रश्न है कि दशा में दुःख है, मगर दशा में दुःख होने पर भी, पर्याय में दुःख होने पर भी..., अब तू थक गया है तो प्रश्न है कि दुःख का अभाव कैसे हो? दुःख के स्थान पर सुख प्रगट कैसे हो- ये तेरा प्रश्न है। तो सुन, '**उस स्वभाव में रहता हुआ, लीन होता हुआ मैं इन क्रोधादि सर्व आस्त्रवों को क्षय को प्राप्त कराता हूँ**।' आहाहा! ऐसी मूल गाथा हुई।

अब टीका। टीका यानि अर्थ का विस्तार। अमृतचंद्राचार्य भगवान हुए, एक हज़ार साल पूर्व, पीछे बाद में। नित्य आनंद का भोजन करनेवाले। मुनिराज का लक्षण क्या है? नित्य अतीन्द्रिय आनंद

का भोजन करते हैं। आहाहा! क्षण में निर्विकल्प और क्षण में सविकल्प दशा आ जाती है। चलते फिरते सिद्ध हैं। मुनिराज की बात कोई अलौकिक होती है। तो उन्होंने ये टीका बनाई एक हज़ार साल बाद। टीका यानि विस्तार। संस्कृत में लिखा। आज से २०० साल पहले ऐसा बनाव बना जयपुर में... जयचन्द पंडित छाबड़ा। जयचन्द जी छाबड़ा। पंडित टोडरमलजी साहब के साथ गोष्ठी में सब आठ दस पंडित साथ में (बैठते थे) उस टाइम में। बहुत अच्छी चर्चा चलती थी। तो ये समयसार तो संस्कृत में था। उसका ढूंढारी, हिंदी में अनुवाद नहीं था। सिर्फ संस्कृत में बात चलती थी। तो जयचन्द पंडित को विचार आया कि इसका अनुवाद करना चाहिए। तो सामान्य जनसमुदाय इसका मर्म समझ सके कि आत्मा का स्वरुप क्या है। क्योंकि इसमें तो आत्मा के स्वरुप की बात है। तो दूसरे पंडित ने कहा कि ये बात तो ऐसी है कि ये तो अकेला निश्चय का ग्रन्थ है। निश्चय का ग्रन्थ पढ़ने से जीव स्वछन्दी हो जाएंगे। इधर-उधर चर्चा तो होती है न? चर्चा हुई तो पंडितजी ने कहा कि शक्कर खाने से गधा तो मर जाता है। ऐसी कहावत है। तो क्या मनुष्य को शक्कर नहीं खाना? बहुत अच्छी बात है। यह बात तो सोचने जैसी है। तो सबने तय कर लिया कि अनुवाद करना चाहिए| तो अनुवाद कौन करे? यह बात आयी तो सबने कहा यह पंडित जयचन्दजी छाबड़ा हैं बराबर। बाद में सब देख लेवें। वो अनुवाद करें, बाद में सब पंडित देख लेवें कोई फेरफार हो तो। तो अनुवाद हो गया। अनुवाद हुआ ढूंढारी में पहले। ढूंढारी में ऐसे पन्ने थे।

ढूंढारी का बाद में..., एक श्रीमद् राजचन्द्र हो गए सौराष्ट्र में, मोरबी के पास ववाणिया, वहां उनका जन्म हुआ था। वो शतावधानी थे। शतावधान करते थे। उन्होंने विचार किया कि ये समयसार, परमात्मप्रकाश आदि का ये चलती हिंदी भाषा में अनुवाद करना ठीक है। तो उन्होंने परमश्रुत प्रभावक मंडल ऐसी स्थापना की, तो वहां ये ढूंढारी पर से समयसार का चलती हिंदी भाषा में अनुवाद करके छप गया। तो ७५ की साल में वो छपा और ७८ की साल में पूज्य गुरुदेव के हाथ में यह शास्त्र आया। वो मुखपट्टी में थे। स्थानकवासी साधु। आहाहा! हाथ में आया समयसार शास्त्र। जौहरी ने परीक्षा कर ली। ये समयसार शास्त्र तो अशरीरी होने का है, निमित्त। आहाहा! उन्होंने अंदर में बहुत गहराई से मनन किया।

वो क्या करते थे? उपवास करके नदी के पास बाहर चले जाते थे शास्त्र लेकर। और वहां एकांत में सारा दिन स्वाध्याय करते थे। और उपाश्रय में स्वाध्याय करें और कोई पैर छूने, नमस्कार करने आए तो सामने देखें नहीं किसी को। आहाहा! ऐसी धुन चढ़ गयी। आहाहा! इस समयसार शास्त्र से उनका भव का अंत आ गया। ऐसा समयसार शास्त्र तो कोई अलौकिक निधि है। आहाहा!

एक दफे ऐसा हुआ कि दो मित्र थे दो। दोनों मित्र गरीब एकदम, साधारण झोपड़े में रहते थे। खाने को भी नहीं। एक को ऐसा हुआ कि मैं साधु हो जाऊं अन्यमति का। तो साधु हो गया अन्यमति का। तो अपने गुरु के साथ तप करने लगा। फिर उसको कोई ऐसी लब्धि प्रगट हो गई..., अज्ञानी को भी लब्धि तो प्रगट होती है। तो उसकी लब्धि में क्या आया? कि लोहा सोना बन जाए। वो पानी मन्त्र पढ़कर छिटकाव करे तो लोहा सोना बन जाए। तो उसको विचार आया कि मेरा मित्र गरीब है तो वहाँ जाकर लिखकर पुस्तक दूँ। तो वहां गया तो कहा कि यह पुस्तक है वांचकर (पढ़कर) उसका प्रयोग

करके सोना बना लेना और मैं दूसरी बार आऊंगा तब मोटर और बंगला तेरे पास होगा। तो (दूसरे मित्र ने) कहा, 'जरूर! सोना बने तो गरीब कहाँ से रहेंगे?' उसने पुस्तक ले ली। बराबर उसको लपेटकर तिजोरी में रख दी। चाबी रखी बराबर अपने पास। एक वर्ष बाद वो आया, दूर से देखा तो वही झोपड़ा! ये क्या है? मेरा मन्त्र गलत है कि क्या है? आया और पूछा कि वो बुक का प्रयोग (किया)? (दूसरे मित्र ने उत्तर दिया) 'नहीं, बुक तो मैंने बहुत संभालकर रखी है। बराबर ताला चाबी लगाकर तिजोरी में रखी है।

ऐसे समयसार तो सबके घर में है मगर भगवान बनने की विधि है तो खोलकर पढ़ता भी नहीं है। पढ़ता है तो ऊपर ऊपर से शिष्टाचार से पढता है। एक पन्ना पढ़ा, हो गया। मंदिर में गया भगवान का दर्शन कर लिया, इधर लिखा है। ऐसा नहीं! भेदज्ञान का मन्त्र है इसमें।

णमोकार मंत्र तो हमको माता पिता से मिला, जन्म से णमोकार मंत्र तो। मगर भेदज्ञान का मंत्र गुरुदेव ने दिया। जयपुर की शिविर के टाइम मैंने कहा कि इस भेदज्ञान के मंत्र से देव हाज़िर होता है। तो सब खुश हुए (कि) ये पंडितजी अच्छा। प्राइवेट में पूछ लेंगे कि ये मंत्र क्या है तो देव हाज़िर होगा तो देव के पास मांग लेंगे। ऐसी चर्चा होने लगी। दूसरे दिन मेरे कान में आया कि आपकी बात तो ऐसी चलती है। दूसरे दिन (मैंने) कहा कि भाई, ये देव की बात नहीं है। चैतन्य देव प्रगट होता है। चैतन्य देव की बात है, वो देव की बात नहीं है। आहाहा! ऐसी बात, समयसारजी शास्त्र तो भागवती शास्त्र है। आहाहा!

मुमुक्षु: दो मित्र की बात ज़रा अधूरी रह गई, अभी पूरी नहीं हुई।

उत्तर: नहीं, पूरी हो गई। बताया न ताला चाबी में, ऐसे समयसार को ताला चाबी में सबने रख दिया। एक दफे मैं भोजन पर गया, समयसार माँगा तो समयसार तो था उनके पास। समझे? लाकर दिया। पन्ने सब पैक थे, तो मैंने कहा, 'पन्ने पैक हैं, तो आप स्वाध्याय नहीं करते?' 'माफ करो, मैंने स्वाध्याय नहीं किया, मैंने संभालकर रखा है। जिनवाणी को वंदन करता हूँ रोज़ नमस्कार करता हूँ।' नमस्कार मात्र से कल्याण होता नहीं है। नमस्कार से शुभभाव होता है और शुभभाव का फल दुःखी होता है। आहाहा! अशुभ का फल भी दुःख और शुभ का फल भी दुःख। और धर्म का फल सुख है। धर्म करना वो अपूर्व चीज़ है। हो गया टाइम।

ॐ